तंत्र कथा

कुमार सुरेश

तंत्र कथा

कुमार सुरेश

तंत्र कथा

व्यंग्य उपन्यास

कुमार सुरेश

Disclaimer:- इस उपन्यास के समस्त पात्र, उनका नामकरण, घटनायें एवं चरित्र सम्पूर्ण रूप से काल्पनिक हैं। इनका किसी भी जीवित या मृत व्यक्ति से कोई संबंध नहीं है। इस तरह का कोई भी संबंध केवल एक संयोग मात्र माना जाए। यह उपन्यास विशुद्ध रूप से एक काल्पनिक साहित्यिक रचना है और इसका उद्देश्य किसी भी व्यक्ति की भावना को ठेस पहुँचाना नहीं है।

भाग–1

इस सरकारी विभाग का जिला ऑफिस शहर के बीचो-बीच मुख्य चौराहे पर एक बहुत पुरानी दो मंजिला ऐतिहासिक इमारत की ऊपरी मंजिल पर था। इमारत ऐतिहासिक थी और कभी शानदार रही थी। 'खंडहर बता रहे हैं, इमारत बुलंद थी' वाला मामला था। मुख्य चौराहे की तरफ बैंक की दो-तीन शाखाएँ थीं। इमारत के पिछवाड़े एक संकरी गली थी। दफ्तर में जाने के लिए दरवाजा इसी सँकरी गली में खुलता था। गुजरने के अलावा इस सँकरी गली का उपयोग लोग दीवार के सहारे खड़े होकर लघुशंका निवारण के लिए भी करते थे। सरकार ने गली के किनारे एक मूत्रालय बनवा दिया था लेकिन इसमें लोगों को दीवारों की ओट में खड़ा होना पड़ता था जबकि गली में खुली हवा और खुशनुमा माहौल था। चूँकि अधिकांश लोग पर्यावरण प्रेमी थे और खुलापन ज्यादा पसंद करते थे, इसलिए मूत्रालय का प्रयोग न करके गली के किनारे दीवार की तरफ मुँह करके अपनी शंका का निर्बाध निवारण करते थे। इस प्रक्रिया के दौरान कई बार उनके कतिपय गोपनीय अंगों का सार्वजनिक प्रदर्शन हो जाता था लेकिन उनका पर्यावरण प्रेम गोपनीयता के आग्रह पर भारी पड़ता था। इस प्राकृतिक वातावरण के कारण सुबह-सुबह दफ्तर आने वाले कर्मचारियों का स्वागत गली में फैली अप्रिय गंध से होता था। शाम को दफ्तर से निकलते समय विदाई भी इसी आबोहवा के साथ होती थी।

इमारत ऐतिहासिक थी और उसका प्लास्टर चूने से बना था। भीतर की तरफ छत पर भी चूने का प्लास्टर था। प्लास्टर पुराना होने के कारण धीरे-धीरे बिल्डिंग का साथ छोड़ रहा था। यह समय के साथ होने वाली सहज प्रक्रिया है। आध्यात्मिक दृष्टि से प्रत्येक मनुष्य को इस प्रक्रिया को विनम्र भाव से स्वीकार करना चाहिए। दिक्कत यह थी कि कभी भी अचानक छत से प्लास्टर का बड़ा-सा टुकड़ा नीचे गिर जाता था। अगर किसी का समय खराब हो और वो ठीक उसी समय गिरते प्लास्टर के नीचे आ जाए तो वह असमय इस नश्वर संसार को छोड़ सकता था।

गली से दफ्तर के दरवाजे में प्रवेश करते ही दो घुमावों के साथ करीब बीस सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती थीं। सीढ़ियों में अक्सर अँधेरा रहता था इसलिए रोजाना आने वाले

अभ्यास के सहारे चढ़ते-उतरते थे। नया आने वाला दीवारें टटोलकर ऊपर चढ़ता था। इस बिल्डिंग की दीवारें लगभग दो फीट मोटी और सीलनदार थीं। कमरे बड़े-बड़े थे और उनकी छत फर्श से लगभग पन्द्रह फीट ऊपर थी जिस पर लोहे से बने सफेद रंग के ऐतिहासिक भारी पंखे लटक रहे थे। किसी अभागे के ऊपर इन पंखों के गिर जाने पर उस बेचारे की परलोक यात्रा में कोई सन्देह नहीं था।

इमारत के बड़े-बड़े कमरों में सरकारी दफ्तरों की सुहानी छटा फैली थी। लकड़ी की पुरानी मेज-कुर्सियाँ थीं। मेजों पर पुराने बदरंग मेजपोश बिछे थे जिनके ऊपर पारदर्शी काँच के आयताकार टुकडे बिछे थे। काँच के इन टुकड़ों की साइज और मोटाई अधिकारी की हैसियत के हिसाब से तय होती थी। बड़े अफसर की टेबल पर पूरी टेबल की साइज का मोटा काँच था। बड़े बाबू की टेबल पर लगभग आधी टेबल को घेरने वाला आयताकार काँच का टुकड़ा था। छोटे बाबुओं की मेज पर चटका या टूटे काँच का छोटा-सा आयताकार टुकड़ा था।

यह दफ्तर शहर के मुख्य बाजार में था, इसलिए कर्मचारी अपने घर, रिश्तेदारी और पास-पड़ोस की सारी खरीद-फरोख्त दफ्तर के समय में ही करते थे। जब कभी ऑफिस में बोर हो जाते, बाजार में चक्कर लगाकर मनोरंजन कर लेते। जिन कर्मचारियों की बीवियाँ स्वादिष्ट खाना नहीं बनाती थीं वो अच्छे पकवान खाने का शौक चाट की दुकानों पर जाकर पूरा करते। जिनकी बीवियाँ बकौल उनकी समझ के सुंदर नहीं थीं वो बाजार में दूसरों की बीवियों को ताक कर अपने अरमान ठंडे करते। शहर के आम नागरिक बाजार में खरीदारी, दफ्तर का काम और बैंक का लेन-देन सभी इस जगह आकर कर लेते थे। कुल मिलाकर शहर का यह हिस्सा सरकार की बहुउद्देशीय परियोजना की तरह था जहाँ नागरिकों और कर्मचारियों का बहुआयामी कल्याण एक साथ होता रहता था।

सुबह के ग्यारह बज रहे थे। बाज़ार की दुकानें खुलने लगीं थीं। सड़कों पर चहल-पहल बढ़ती जा रही थी। चपरासियों ने आकर ऑफिस के कमरे खोल दिए थे। कमरों में झाड़ू लग रही थी। कर्मचारियों के आने का सिलसिला आरम्भ हो चुका था। कुछ कर्मचारी, जो घर की चिक-चिक से परेशान रहते थे, ऑफिस आ चुके थे। सबसे पहले आने वालों में निरीक्षक छोटेलाल भी थे। उनका नाम तो छोटेलाल था ही, उनकी पत्नी के तेज स्वभाव के कारण वो अपने आपको सचमुच छोटा समझने भी लगे थे। छोटेलाल ने उपस्थिति पंजी में हस्ताक्षर किए जिससे उनकी आज की नौकरी पक्की हो गई। इसके बाद वो सीढ़ियों से उतरकर बाहर आ गए और जाकर मुख्य चौराहे पर बनी रोटरी की बैंच पर बैठ गए। अब वो रिलेक्स मुद्रा में ध्यान की अवस्था में पहुँचकर चारों ओर भाग रहे संसार

को दृष्टा भाव से देखने लगे। चारों ओर भागमभाग मची थी। लोग गाड़ियों में या पैदल भागे जा रहे थे। छोटेलाल इस भागते-दौड़ते संसार के बीच शान्ति के एक द्वीप की तरह चुपचाप बैठे थे। लंच के समय से आधा घन्टा पहले उनकी समाधि भंग हुई और वो वापस दफ्तर आकर अपनी कुर्सी पर बैठ गए। चौराहे के बीचों-बीच की गई गहरी साधना से प्राप्त ऊर्जा की शक्ति से उन्होंने आवंटित काम फुर्ती से निपटाया और सीढ़ियों से उतरकर वापस चौराहे पर पड़ी बैंच की तरफ बढ़ लिए।

वरिष्ठ निरीक्षक चन्द्रा जी भी सुबह ग्यारह बजे ऑफिस आ पहुँचे। अपनी इकहरी कद-काठी और खिचड़ी बालों के कारण इन्हें दूर से पहचाना जा सकता था। उमर लगभग पचास के पेटे में थी। चन्द्रा जी साहित्य प्रेमी थे और पढ़ी हुई नैतिक शिक्षा को अपने जीवन में उतारने का भरसक प्रयास करते रहते थे। उन्होंने जब से गांधी जी की पुस्तक 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग' पढ़ी थी तब से वो सत्य के साथ अपने ढंग से प्रयोग करने पर उतारू थे। इन्होंने भी उपस्थिति रजिस्टर पर अपने हस्ताक्षर बनाए और सीढ़ियों से नीचे उतरकर मुख्य सड़क पर टेम्पो स्टैण्ड के पास जाकर खड़े हो गए। इनकी चौकन्नी नज़रें अपने चारों ओर कुछ ढूँढ रही थीं। थोड़ी ही देर में दो सुन्दर स्त्रियाँ, जिनमें से एक की गोद में छोटा बच्चा भी था टेम्पो स्टैण्ड पर आकर खड़ी हो गईं। चन्द्रा जी अनजान भाव से उनके पास जाकर खड़े हो गए। टेम्पो लगातार आ-जा रहे थे। जैसे ही दोनों स्त्रियाँ उनकी मंजिल पर पहुँचाने वाले टेम्पो में चढ़ीं, चन्द्रा जी भी उसी टेम्पो में चढ़ गए और स्त्रियों की बगल में बैठ गए। डाक्टर ने चन्द्रा जी को पारिवारिक जीवन में अब संयम बरतने की सलाह दी थी इसीलिए वो स्वयं के संयम की जाँच टेम्पो में सुंदर स्त्रियों के साथ बैठकर करते थे।

उन दिनों दफ्तर के पास वाले मुख्य चौराहे से शहर की हर दिशा के लिए तीन पहिए वाले काले रंग के 'टेम्पो' चलते थे जिनकी अगली और पिछली दोनों सीटों पर तीन-तीन लोग बैठ सकते थे। आगे-पीछे खिसककर और सटकर चार लोग बैठ जाते थे। नई पीढ़ी के बहुत से लोग तो 'टेम्पो' का अर्थ समझ ही न पाएँगे। वो कल्पना कर लें कि तीन पहियों पर चलने वाली कार से बड़ी मोटर जिसमें सवारियों को ढोया जाता था। भोपाल में इस सवारी को भट-सूअर कहा जाता था क्योंकि यह चलते समय भट्-भट् की आवाज करता था और देखने में सुअर जैसा लगता था।

चन्द्रा जी टेम्पो में महिलाओं के साथ सटकर बैठ गए। रोड पर जगह-जगह गड्ढे थे इसलिए टेम्पो में बार-बार झटके लग रहे थे। इन झटकों का फायदा उठाकर चन्द्रा